अंध-विश्वास में है ऊंची कमाई

कार्पोरेट मीडिया स्वयं को 'राष्ट्रीय मीडिया' बताता है। उसके बाहरी अंदाज़ कुछ इस तरह के होते हैं जैसे उसकी चिन्ता में देशवासियों का भविष्य और देश की प्रगति ही सर्वोपरि हैं। बड़ी सफ़ाई से यह मीडिया इस सच्चाई को छिपाये रखता है कि उसका मालिक कौन है और वह अन्ततः किन हितों का पोषण करता है। क्योंकि इस मीडिया की बाग़डोर कार्पोरेटों के हाथों में होती है, अतः जहां-जहां कार्पोरेटों के हित जनता से टकराते हैं यह मीडिया बड़ी सफ़ाई से जनविरोधी मूल्यों व शक्तियों को पालता-पोसता मिलेगा। इस स्तंभ में नियमित रूप से कार्पोरेट मीडिया के ऐसे ही आयामों को उजागर किया जायेगा।

ज़ यदि आप देर रात या अलसुबह अपना टीवी खोलें तो एक अलग ही दुनिया नज़र आयेगी। खासतौर पर बड़े टी वी चैनल जैसे एन डी टी वी, ए बी पी, आजतक, ज़ी टी वी, आई बी एन 7 इत्यादि आपको जादुई अंध-विश्वास का पाठ पढाते मिलेंगे। कोई खान साहब, कोई राय बहादुर, कोई बाबा, कोई साध्वी, कोई गुरु, यह बताने में तल्लीन होंगे कि कैसे उनके जादुई इलाज से कोई भी लाइलाज मर्ज छूमंतर हो जाता है।

देखने वालों को ताज्जुब होगा कि कुछ घंटे पहले ये ही चैनल बड़ी-बड़ी प्रगतिशीलता, तर्कशीलता एवं वैज्ञानिकता बघार रहे थे। कुछ घंटों बाद भी वे ऐसा ही करते मिलेंगे। तो इस बीच में, देर रात व अलसुबह, उन्हें क्या हो जाता है? दरअसल इन तथाकथित राष्ट्रीय चैनलों के जिम्मे उनके आकाओं ने बड़ी मोटी मुनाफ़ाखोरी का लक्ष्य भी रखा होता है। लिहाज़ा अंध विश्वास फ़ैलाने वाले विज्ञापन परोसना उनकी जरूरत हो जाती है।

इन विज्ञापनों के जरिये एक पूर्णतया अंधविश्वास को समर्पित समाज तैयार किया जा रहा है। दावा किया जाता है कि कैंसर, ह्रदयरोग, पक्षाघात, मधुमेह व अन्य असाध्य रोग भी चुटकियों में दूर किये जा सकते हैं। इसी तरह शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक शान्ति को भी पलक झपकते पाया जा सकता है। लोग़ों का विश्वास जीतने के लिये इन विज्ञापनों में फ़र्ज़ी साक्षात्कार दिखाये जाते हैं जिनमें इन दावों की पुष्टि 'भुगतभोगियों' और उनके तीमारदारों द्वारा की जाती है।

देश में 'मैजिक रैमेडीज़ एक्ट' नाम का पुराना कानून है जो इन पाखंडों को अपराध घोषित करता है। कुछ माह पूर्व अंधविश्वास विरोधी एक्टिविस्ट नरेन्द्र दाभोलकर की पुणे में हत्या के बाद महाराष्ट्र सरकार ने अंधविश्वासों की रोक थाम के लिये एक कड़ा अध्यादेश जारी किया था। ये सारे चैनल महाराष्ट्र में भी दिखाये जाते हैं और उन पर विज्ञापित होने वाले पाखंड गंभीर अपराध के रूप में लिये जाने चाहिये। साथ ही सम्बन्धित मीडिया चैनलों को भी सह-अपराधी बनाया जाना चाहिए। पर महाराष्ट्र समेत सारे भारत में इन दुष्प्रचारों को कानूनन रोकने वाला कोई नहीं है।

हैरान करने वाला ताजातरीन उदाहरण निर्मलजीत सिंह नरूला उर्फ़ निर्मल बाबा का है। लुधियाना के इस व्यापारी ने व्यापार में भारी घाटा खाने के बाद बाबा बनकर जनता को ठगने का धंधा अपनाया तथा सैंकड़ों करोड़ कमा लिए। गत् सप्ताह इस पाखंडी ने अपने एक भगत की मधुमेह बीमारी को दूर करने के लिए उसे खीर खाने की सलाह दी। इससे उसकी स्थिति मरणासन्न हो गई। पीडित व्यक्ति पुलिस के पास गया, सुनवाई नहीं होने पर अदालत गया। अदालती आदेश पर मुकदमा तो कायम हो गया लेकिन निर्मल का धोखाधड़ी का धंधा बदस्तर टीवी चैनलों के माध्यमों से जारी है।

इसका कारण जानना मुश्किल नहीं। लाखों-करोड़ों की मीडिया को कमाई देने वाले इन पाखंडियों की अपनी धन-शक्ति का अंदाज़ा सहज ही लगाया जा सकता है। पैसे के अलावा एक अन्य पहलू यह भी है कि अंधविश्वास को पोसने से शासक वर्गों की भी भरपूर सेवा होती है। यदि जनता इन ढकोसलों में उलझी रहेगी तो उसे बहकाये रखना आसान रहेगा। बजाय स्वास्थ्य, शिक्षा, रोज़गार जैसी बुनियादी जरूरतों पर तार्किक रूप से विचारने के, लोग इन पाखंडियों के ज्योतिषफलों, रत्न-मालाओं, उल्टी-सीधी दवाओं, झाड़-फूक मंत्रों इत्यादि में उलझे रहें तो शासकों की लूट में विघ्न उतना ही कम पड़ेगा।

कहने को सारे देश में उपभोक्ता फ़ोरमों का जाल बिछा हुआ है। दवाओं की गुणवत्ता के लिये केन्द्र सरकार व तमाम राज्य सरकारों के मन्त्रालय व विभाग चल रहे हैं। जालसाजियों को पकड़ने के लिये पुलिस व खुफ़िया एजेंसियों का तन्त्र है। न्यायालय भी जनहित में रोज़ाना के शासन में दखल देते रहते हैं। ऐसे में खुले रूप से मीडिया की व्यापकतम पहुंच का इस्तेमाल कर जनता के हित से खिलवाड़ करने को क्या कहा जायेगा?

कार्पोरेट के अपराधीकरण के साथ ही उसके मीडिया का अपराधीकरण भी सम्पूर्ण है।

कयास है कि गुरुघंटालों के ये चैनल, काले धन को सफ़ेद बनाने के विश्वस्त माध्यम भी बने हुए हैं। अचानक चैनलों पर एक 'बाबा' प्रकट हो जाता है। करोड़ों खर्च कर वह टी वी टाइम खरीदता है और उसे विशाल संख्या में भगतों/अनुयायियों से घिरा दिखया जाता है। उसका रहन-सहन/आश्रम इत्यादि बेहद प्रभावी होते हैं। कुछ ही समय में उसकी सम्पत्ति हज़ारों करोड़ की आंकी जाने लगती है। कोई पूछने वाला नहीं कि उनकी आय का स्रोत क्या है? वे कहां से इतना बड़ा निवेष वाला व्यापार शुरू कर सके? कौन हैं उन्हें चन्दा/ दान इत्यादि देने वाले?

जाहिर है कार्पोरेट मीडिया का मुंह इन बाबाओं से मिलने वाली बड़ी विज्ञापन राशि से बन्द रखा जाता है। टैक्स व काला धन से जुड़े सरकारी विभाग भी छानबीन कर अपनी फ़जीहत नहीं कराना चाहते। क्योंकि कालाधन होता तो कार्पोरेटों, नेताओं, अफ़सरों, मीडिया-जारों का ही है।

यूपीए-2 सरकार और विज्ञापन पर सरकारी खर्च

कुछ दिनों पहले यूपीए सरकार में विशेष तौर पर सोनिया गांधी द्वारा मंत्रियों, सासदों को इस बात की हिदायत दी गयी थी कि वे अपने रहन-सहन, यात्रा, जेब खर्च, खाने-पीने इत्यादि में सादगी लायें व कम खर्च करें। यह वह समय था जब देश के अंदर इस बात की बहस चल रही थी कि ग़रीबी की रेखा क्या हो? उस समय शहर में 30 रुपये व गांव में 20 रुपये से कम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन खर्च कर रहा था।

जब जीवित व्यक्ति इतने कम में गुजारा कर रहे हों तब उस समय मृत व्यक्तियों (नेताओं) की मृत्यु व जन्म तिथि के अवसर पर सरकार करोड़ों रुपये खर्च क्यों कर रही थी। डाइरेक्टरेट आफ़ एडवरटाइजमेण्ट एण्ड विजुअल पब्लिसिटी (डी ए वी पी) के अनुसार पिछले पांच सालों में 2008-09 व 2012-13 के मध्य सरकार ने इस मद में 142.3 करोड़ रुपये खर्च किये। 15 नेताओं पर यह पैसा खर्च किया। जिनमें जवाहर लाल नेहरू, राजीव गांधी, इंदिरा गांधी, बी.आर. अम्बेडकर, महात्मा गांधी प्रमुख हैं।

इन नेताओं के विज्ञापनों पर खर्च किये गये धन के बंटवारे के हिसाब से देखा जाए तो इसमें भी परिवारवाद हमें देखने को मिल जाता है। महात्मा गांधी पर सबसे ज्यादा 38.3 करोड़ रुपये खर्च किया गया है। जबकि उसके बाद राजीव गांधी जवाहरलाल नेहरू व इंदिरा गांधी

मनमोहन और सोनिया : देखो हम कितने अच्छे लोग हैं

का नंबर आता है। चूंकि इस समय यूपीए-2 की सरकार है और कांग्रेस की मुखिया अप्रत्यक्ष रूप में इसमें मुख्य भूमिका निभाती है। अत: विज्ञापनों पर भी उनके हिसाब से ही पैसा खर्च हुआ है। सोनिया गांधी के स्वर्गीय पति राजीव गांधी पर विज्ञापन में 26 करोड़ के लगभग रुपया खर्च किया गया है, उसके बाद उनकी सास केवल इंदिरागांधी का नम्बर है। जिन पर 16.9 करोड़ खर्च किया गया है। केवल अम्बेडकर ही ऐसे गैर कांग्रेसी नेता हैं जिन पर 10 करोड़ से ऊपर खर्च किया गया। 142.3 करोड़ में से 100 करोड़ से ज़्यादा केवल ऊपर के पांच नेताओं पर खर्च किया गया।

बेशक अपने भूतपूर्व नेताओं को याद करना कोई गलत बात नहीं है। लेकिन जब उसी सरकार के नेतृत्व में बड़ी संख्या में लोग शिक्षा, स्वास्थ्य, जैसी सुविधाओं से मरहूम हों, जब लोग इतने गरीब हैं कि वे अनाज नहीं खरीद सकते हैं और उनके लिये खाद्य सुरक्षा बिल पास कराने के लिये इतनी कड़ी मशक्कत करनी पड़ रही हो। महंगाई के कारण आम आदमी का निवाला छिन रहा हो तब ऐसे में सार्वजनिक मद का पैसा विज्ञापनों पर बहाना फ़िजूल ही लगता है।

लेकिन यह व्यवस्था और क्या कर सकती है। यह व्यवस्था परजीवी ही है जो दूसरों के पैसों यानी ग़रीब- जनता के शोषण पर ही टिकी है। जाहिर सी बात है इस व्यवस्था को चलाने वाले अपने नेताओं को दूसरों के पैसों पर ही याद कर सकते हैं और आम लोग अपने पैसों का इसी तरह दुरुपयोग होते देख सकने के लिए बाध्य हैं।

-अम्बुज आगरा

तुर्की-ब-तुर्की

राजीव शुक्ला
केन्द्रीय मन्त्री

''चुनाव के नतीजे बताते हैं कि जन-कल्याण से वोट नहीं मिलते।''

हमारा कहना है-

- अच्छा होता कि आप उक्त बयान को पूरा कर देते। तब बयान कुछ यूं बनता-कांग्रेस के जनकल्याण से वोट मिलना बन्द हो गये क्यों कि इन्हें लागू करने में जन और कल्याण अलग-अलग हो जाते हैं। जन तो इन्तज़ार करता रह जाता है और कल्याण नेताओं, अफ़सरों, दलालों, लग्गुओं-भग्गुओं का ही होता रहता है।

- काग़ज़ों में जन-कल्याण की योजनायें बनाना और उनके लिये बजट आवंटित करना एक बात है, जिसमें महारत हासिल की हुई है कांग्रेस ने। पर इन योजनाओं और बजटों का लाभ आम जन तक पहुंचाना भ्रष्ट सरकारी मशीनरी और कार्पोरेटों के हाथों बिकी कांग्रेस पार्टी के बस में कहां।

- कांग्रेस शासन ने कार्पोरेटों को लूट का लाइसेंस दिया हुआ है और इसकी कीमत देश के आम जन को महंगाई एवं बुनियादी सुविधाओं के अभाव से चुकानी पड़ती है। इस लिहाज से कांग्रेस को अपनी हार का ठीकरा बजाय जनता के सिर पर फ़ोड़ने के कार्पोरेटों से अपनी साझेदारी के मत्थे मढना चाहिये।

- राजीव शुक्ला जी, लगता है क्रिकेट की मोटी लूट से अपकी जीवनशैली ही नहीं बल्कि सोच भी पंचतारा माहौल में रंग गयी है। क्या आप जनता को इतना उल्लू समझते हैं कि आप बहकाते रहें और वह बहकती रहे। अरे, काठ की हांडी कितनी बार चढाओगे?

और अन्त में, अभी तो जनता ने तुम्हारे 'जनकल्याण' का स्वाद ही वापस तुम्हें चटाया है। आगामी चुनावों की सोचो जब वह तुम्हें तुम्हारे 'जन-कल्याण' की पूरी खुराक देगी।

425 करोड़ रुपयों का मंगलयान?

गर्व नहीं, शर्म करो।

आ ज से 40 वर्ष पहले जब दो देशों की तुलना की जाती थी तो उनका चांद पर पहुंचना उनके आगे होने का एक नमूना माना जाता था। धीरे-धीरे चांद पर पहुंचना छोटी बात होने लगी और मंगल तक पहुंचने की देशों में होड़ छिड़ गयी। इस होड़ मे अमेरिका, रूस यूरोपीय एजेंसी पहले मंगल तक उपग्रह भेजने में सफल रहे। चीन, जापान ने भी कोशिश की पर उनका प्रयास बेकार हो गया। ऐसे में भारत ने भी बीते दिनों अपना मंगलयान रवाना कर दिया। यह मंगल की कक्षा तक पहुंचेगा या नहीं यह तो अगले साल गर्मियों तक पता चलेगा। पर भारत में चीन से प्रतियोगिता में एक कदम आगे होने का प्रदर्शन जरूर कर दिया।

मंगलयान नामक इस प्रदर्शन पर भारत के शासकों ने लगभग 425 करोड़ रुपये फ़ूंक डाले। अपने मंगलयान की प्रारम्भिक सफलता पर मीडिया ने ऐसे कसीदे गढ़े कि लगने लगा कि अब भारत का विकसित देश बनना दूर नहीं। लोग आंखे आसमान की ओर कर मंगल को ताकते हुए खुश होने लगे। अपने वैज्ञानिकों को दाद देने लगे। पर यह खुशी ज़्यादा देर नहीं टिकी। आंखे ऊपर किये जब गर्दन थकने लगी तो लोगों ने निगाहें नीचे कीं। पर नीचे पेट था, भूख थी। जिनके पेट भरे थे वो गर्व महसूस करते रहे। जिनके पेट खाली थे उन्हें भूखे पेट गर्व करना अजीब लगा। हकीकत यही थी कि 20 के पेट भरे थे 80 के पेट खाली या आधे भरे थे। 80 को धीरे-धीरे ये फिजूलखर्ची लगने लगी कि 425 करोड़ रुपये मंगल जाने पर खर्च किये जायें। उन्हें समझ में आने लगा कि 20 लोगों पर ही इतनी अमीरी है कि वह इस विलासिता पर खुश हो सकें। 425 करोड़ रुपया से मंगल यात्रा की जगह अगर शिक्षा स्वास्थ्य-रोजगार पर खर्च किया जाता तो ग़रीबी कुछ घटती, देश विकास की ओर बढ़ता। पर यहां 425 करोड़ रुपया जनता की मेहनत से निचोड़ अंतरिक्ष में यान भेजा जाता है। अंतरिक्ष में अनुसंधान जरूरी है पर वह जनता के भूखे पेट भरने से ज़्यादा जरूरी नहीं हैं, इसलिए भूख की समस्या पहले हल की जानी चाहिए। पर पूंजीपतियों की व्यवस्था लोगों को भूखा बना कर ही तरक्की करती है, चांद तारों तक पहुंचना चाहती है। इसलिए मौजूदा मंगलयान पूंजीपतियों के लिये गर्व का विषय है जनता के लिए शर्म का।

- नागरिक